ISSN 2277-5587
Impact Factor 4.705
Indexed in ULRICH, ISIFI, SJIF & DOJI
UGC Valid Journal (The Gazette of India,
Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Refereed Journal)

शोध श्री

Issue - 2 April-June 2020 RNI NO. RAJHIN / 2011 / 40531

CHIEF EDITOR
Virendra Sharma

EDITOR
Dr. Ravindra Tailor

shodhshree@gmail.com
www.shodhshree.com

Scanned with CamScanner

याज्ञवल्क्य स्मृति में प्रतिपादित राजधर्म : एक अध्ययन

डॉ. मूल चन्द
सह आचार्य, राजकीय लोहिया महाविद्यालय, चूरू

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

प्राचीनकाल (स्मृतिकाल) में राजा अपने देश का निर्वहन कैसे करता था तथा देश संचालन हेतु जो भी नियम, कानून, कर्त्तव्य इत्यादि थे वो सब राजधर्म के अन्तर्गत समाहित थे। याज्ञवल्क्य की स्मृति में राजधर्म के सम्बन्धित प्रसंग उपलब्ध हैं। राजधर्म के अन्तर्गत कहा गया है कि नियमानुसार राजा बनने हेतु क्या-क्या गुण होने चाहिए, राजा की शिक्षा-दीक्षा कैसी रहती थी, राजा की दिनचर्या कैसी होती थी, प्रजा का किस प्रकार से पालन करता था तथा प्रजा संरक्षण कैसे करता था, प्रजा के प्रति राजा के क्या-क्या उत्तरदायित्व होते थे, यदि कोई अपराधी कोई अपराध करता था तो किस प्रकार का दण्ड दिया जाता था, इसका विधान भी राजा ही करता था। मन्त्री की योग्यताएं, कर लगाना, बल (सेना) का संचालन, युद्ध करना, सीमा सम्बन्धी ज्ञान इत्यादि महत्वपूर्ण बिन्दु इस पत्र में समाहित हैं।

संकेताक्षर : *राजधर्म, धर्मशास्त्र, याज्ञवल्क्य, धर्म संहिता, अमात्य, ऋग्वेद, इन्द्र, अग्नि, आत्मा, धर्म, तर्कशास्त्र, आन्विक्षिकी, आत्मविद्या इत्यादि।*

स्मृतियों का स्थान वैदिक धर्म सूत्रों के पश्चात् आता है। इनको धर्म संहिता भी कहा गया है। स्मृति शब्द (स्त्री) स्मृ+क्तिन् प्रत्यय से सम्पन्न हुआ है, जिसका सामान्य अर्थ स्मरणशक्ति, यादास्त, संस्कारमात्रजन्य ज्ञानं स्मृतिः (तर्क) चिन्तन करना, मन में ध्यान करना, मानव धर्मशास्त्र, परम्परागत धर्मशास्त्र, स्मृति ग्रन्थ व अनुभूत विषय जन्य ज्ञान इत्यादि है। स्मृति तथा धर्मशास्त्र का अर्थ एक ही है जैसा कि मनुस्मृति में कहा "श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रंतु वै स्मृतिः"[1]

पो. पी. वी. काणे के अनुसार स्मृतियों की संख्या लगभग 100 है।[2]

स्मृतियों का आशय धर्मशास्त्र की उन रचनाओं से है जो प्रायः श्लोकों में वर्णित है तथा ये उन्हीं विषयों का विवेचन करती है, जिनका उल्लेख (प्रतिपादन) धर्मसूत्रों में किया गया है। कुछ प्रमुख स्मृतियाँ भी हैं यथा मनु, बृहस्पति, दक्ष, गौतम, यम, अंगिरा, योगीश्वर, प्रचेता, पाराशर, संवर्त, उशनस्, शंख लिखित, अत्रि, विष्णु, आपस्तम्ब और हारीत इत्यादि मुख्य हैं। मनु व याज्ञवल्क्य स्मृतियां सर्व प्रमुख मानी गई हैं। मनुस्मृति की तुलना में याज्ञवल्क्य स्मृति सुगठित है परन्तु याज्ञवल्क्य स्मृति तुलनात्मक दृष्टि से छोटी है।

याज्ञवल्क्य स्मृति के प्रथम आचार अध्याय में 13 प्रकरण हैं। इसके 13वें प्रकरण का नाम राजधर्म है, जिसके अन्तर्गत अभिषिक्त राजा का धर्म (राजा के गुण) मन्त्री, पुरोहित, राज्यानुशासन, रक्षार्थ, राजा के कर्त्तव्य, न्याय शासन, कर एवं व्यय, दूसरे राजा की विजय का फल, पराजित देश की मर्यादा का पालन, मन्त्रणा का गोपन, पड़ौसी राज्यों से सतर्कता, साम, दान आदि उपाय, सन्धि और विग्रह, आक्रमण करने का समय, मण्डल रचना, राज्य के अंग, दण्ड और धर्म, दण्ड अवधारणा की योग्यता, अनुचित दण्ड प्रयोग का अधर्म उचित दण्ड का प्रयोग, अर्थ दण्ड की श्रेणियों इत्यादि द्वितीय अध्याय में 25 प्रकरण हैं, – इस अध्याय में न्याय भवन के सदस्य, न्यायाधीश, व्यवहार, पद की परिभाषा, कार्यविधि, अभियोग, जमानत, साक्षी, धर्मशास्त्र एवं अर्थशास्त्र का परस्पर विरोध, न्यायालयों के प्रकार इत्यादि का वर्णन है। तीसरे अध्याय का नाम प्रायश्चिताध्याय है, जिसमें 5 प्रकरण हैं।

स्मृति ग्रन्थों ने वेदों का समर्थन किया है। स्मृति ग्रन्थों में प्रायः राज्य व राजा को एक ही स्वीकार किया है।

Scanned with CamScanner

याज्ञवल्क्य स्मृति में सप्तांग सिद्धान्त को मानते हुए राजा, अमात्य, पुर, देश, कोष, दण्ड और सुहृत को राज्य के सप्तांग के रूप में स्वीकार किया है।[3]

ऋग्वेद में भी राजा की उत्पति के विषय में वर्णन प्राप्त होता है। वैसे ऋग्वेद में इन्द्र, प्रजापति, अग्नि, वरूण, विष्णु इत्यादि बहुत से राजाओं का वर्णन किया गया है। यद्यपि वेद में उन राजाओं को कई स्थानों पर देवताओं के नाम से उल्लेखित किया है- जैसे संज्ञान, अग्नि, उषा, सूर्य, पुरुष इत्यादि में इन सबको देवता के रूप में स्वीकार कर रहा हूं। फिर भी कुछ देवताओं को राजा के रूप में भी कहा है जैसे इन्द्र, प्रजापति आदि हैं। स्मृति ग्रन्थों में कहा कि राजा के अन्दर उपर्युक्त देवताओं का अंश होता है। ईश्वर आत्मा, भगवान व राजा इन सभी के नामोल्लेख में विभिन्नता है तथापि इनके कार्यों में प्रायः समानता दिखाई देती है। वेद में राजा की उत्पति व गुणों के सन्दर्भ में कहा-

'त्वं राजेन्द्र ये च देवा रक्षा नृन्पालसुर
त्वमस्मान्। त्वं सत्पतिमर्घवा नस्तरुत्रस्
त्वं सत्यो वसानः सहोदाः।"[4]

अर्थात् जो राजा होना चाहिए वह धार्मिक सत्पुरुष, विद्वान्, मन्त्रीजनों को अच्छे प्रकार रखकर उनसे प्रजाजनों की पालना करावें। जो भी सत्याचारी, बलवान, सज्जनों का संग करने वाला है वह राज्य को प्राप्त होता है।

राजा के गुण

याज्ञवल्क्य स्मृति में राजा के महान् उत्साही, अत्यन्त धन देने वाला, विनीत, सम्पत्ति और विपत्ति में एक सा आचरण करने वाला अर्थात् सत्त्वसम्पन्न, कुलीन, सत्य बोलने वाला, पवित्र, आलस्य रहित, सद्गुणी, दूसरे का दोष न कहने वाला, धार्मिक, व्यसन न रखने वाला, बुद्धिमान्, वीर, रहस्य को छुपाने में चतुर, अपने राज्य के प्रवेश द्वारों को गुप्त रखने वाला तथा आन्वीक्षिकी दण्ड नीति विद्या एवं वार्ता (कृषि, वाणिज्य) इन तीनों में प्रवीण होना चाहिए।[5]

जो राजा अन्यायपूर्वक अपनी प्रजा से धन लेकर अपने कोष की वृद्धि करता है वह शीघ्र ही लक्ष्मीहीन होकर अपने बान्धवों सहित नष्ट हो जाता है। प्रजा को पीड़ा पहुंचाने पर प्रजा के सन्तान से राजा के कुल, शोभा और प्राणों को नष्ट किए बिना शान्त नहीं होती।

राजा के दुर्गुण

स्मृति ग्रन्थों में राजा के काम से उत्पन्न दस व्यसनों और क्रोध से उत्पन्न आठ दोषों से दूर रहने का परामर्श दिया गया है। मनु ने काम से उत्पन्न व्यसनों को राजा के लिए कष्टदायक माना है ये दस व्यसन हैं- मृगया, जुआ खेलना, दिन में सोना, पराया दोष कहना, स्त्रियों में आसक्ति, मद्यपान, नाचना, गाना, बजाना तथा व्यर्थ में घूमना और शिकार खेलना इत्यादि राजा के लिए अधिक कष्टदायक हैं।[6]

याज्ञवल्क्य मनु से भिन्न दुर्गुणों का राजा में दर्शन करते हैं, उनके अनुसार राजा का सबसे बड़ा दुर्गुण है अन्यायपूर्वक प्रजा से धन लेकर कोष वृद्धि करना और प्रजा को पीड़ा पहुंचाना, जो राजा अन्यायपूर्वक अपनी प्रजा से धन लेकर अपने कोष की वृद्धि करता है वह शीघ्र ही श्रीहीन होकर अपने बान्धवों सहित नष्ट हो जाता हैं प्रजापीड़न के सन्ताप की अग्नि राजा के कुल, शोभा और प्राणों को नष्ट किए बिना शान्त नहीं होती।[7]

राजपद की आनुवंशिकता

याज्ञवल्क्य स्मृति में भी श्रेष्ठ भाग पर ज्येष्ठ पुत्र के अधिकार को मान्यता दी गई है। इसी श्लोक की मिताक्षरा में विज्ञानेश्वर ने नारद व गौतम के मतों को उद्धृत करते हुए ज्येष्ठ पुत्र के श्रेष्ठ भाग पर अधिकार को मान्यता प्रदान की है।

राजा की शिक्षा-दीक्षा

प्रायः सभी प्राचीन ग्रन्थों ने स्वीकार किया है कि राजपद को ग्रहण करने से पूर्व राजकुमारों को विभिन्न विषयों में शिक्षित होने के पश्चात् दक्षता प्राप्त करना आवश्यक है। मनु ने कहा है कि राजा को चाहिए कि वह तीनों वेदों के ज्ञाता ब्राह्मणों से तीन वेद, सनातन दण्डनीति, तर्कशास्त्र और ब्रह्म विद्या सीखे और अन्य विद्वानों एवं दक्ष पुरुषों से वार्ता (कृषि, वाणिज्य आदि) का ज्ञान ग्रहण करें।

याज्ञवल्क्य ने भी राजा को आन्वीक्षिकी (आत्म विद्या), दण्ड नीति (भोग क्षेमोपयोगी विद्या) एवं वार्ता (कृषि, वाणिज्य) आदि का ज्ञान प्राप्त करने का परामर्श दिया है।[8]

राजा की दिनचर्या

स्मृति ग्रन्थों में राजा की दिनचर्या का विभाजन इस प्रकार किया है कि राजा को चाहिए कि वह प्रतिदिन प्रातःकाल (पुर और अपनी) रक्षा करके स्वयं आय और व्यय का लेखा देखें। इसके पश्चात् ही व्यवहार (वाद-मुकदमें देखें) और तब स्नान करके समय से भोजन करें।[9]

इसके उपरान्त (स्वर्णादि लाने के लिए) नियुक्त व्यक्तियों द्वारा लाए गए स्वर्ण को देखकर भण्डार में रखे तब गुप्तचरों से बात करे और फिर मन्त्री के साथ

ISSN 2277-5587

Scanned with CamScanner

बैठकर दूतों को निर्दिष्ट कार्य करने के लिए भेजे।[10]

याज्ञवल्क्य तथा मनु दोनों ही अपराह्णकाल में राजा को रनवास में विश्राम करने का परामर्श देते हैं। अपराह्णकाल के विश्रामोपरान्त राजा को अपनी सेना के योद्धाओं, वाहनों, अस्त्र-शस्त्रों और आभरणों आदि का निरीक्षण करना चाहिए। सायंकाल में राजा को सन्ध्योपासना के उपरान्त गुप्तचरों से (अकेले में) बातचीत करनी चाहिए। इसके पश्चात् गीत और नृत्य का आनन्द लेकर भोजन करना चाहिए और रात्रि शयन से पूर्व स्वाध्याय करना चाहिए। विशेष बात यह है कि याज्ञवल्क्य के अनुसार राजा दूसरे दिन प्रातः अपनी बुद्धि से शास्त्रों का और दिन में किए जाने वाले सभी कार्यों का चिन्तन करें।

शत्रुओं से युद्ध करना

यद्यपि स्मृतिकारों ने राजा को यही परामर्श दिया है कि यथासम्भव वह पहले युद्ध का सहरा न ले। क्योंकि बल से दूसरे राष्ट्रों को ग्रहण करने वाला कभी शूरवीर नहीं कहा जा सकता।[11]

लेकिन इसका तात्पर्य यह भी नहीं है कि क्षत्रिय होकर भी वह युद्ध न करे। युद्ध के सन्दर्भ में याज्ञवल्क्य ने कहा कि जो भूमि के लिए युद्ध में सम्मुख लड़ते हुए अकूट (विष से बुझे हुए) हथियारों से मारे जाते हैं वे योद्धा योगियों के समान (मृत्यु के उपरान्त) स्वर्ग को प्राप्त करते हैं।

यथा-

पदानि क्रतुतुल्यानि भग्नेष्वविनिवर्तिनाम्।
राजा सुकृतमादते हतानां विपलायिनाम्।।[12]

युद्ध के सन्दर्भ में ही याज्ञवल्क्य ने कहा कि युद्ध को यज्ञों के तुल्य मानते हुए अपनी सेना के नष्ट हो जाने पर भी सेना की ओर से लड़ते हुए राजा के प्रत्येक पग (कदम) यज्ञों के समान होते हैं। अर्थात् सब कुछ नष्ट होने पर भी जो राजा शत्रु का मुकाबला करते हुए जितने पग आगे बढ़ता जाता है उसे उतने ही यज्ञों का फल प्राप्त होता है।[13]

प्रजा रक्षण

प्रजा रक्षण के सन्दर्भ में गौतम स्मृति में कहा कि अपने राज्य में बसने वाली समस्त राजा प्रजा की रक्षा करना राजा का धर्म है। याज्ञवल्क्य ने प्रजा रक्षण हेतु कहा कि केवल बाह्य विपत्तियों से प्रजा की रक्षा करना ही राजा का दायित्व नहीं है वरन् अपने राष्ट्र में रहने वाले दुष्ट लोगों से भी उनका रक्षण आवश्यक है। राजा को चाहिए कि वह लुटेरों, चोरों, ऐन्द्रजालिक आदि धूर्तों एवं दुःसाहसी डाकुओं आदि से पीड़ित प्रजा की रक्षा करे और विशेषकर कायस्थों (लखकों एवं गणकों) से पीड़ित व्यक्तियों की रक्षा करें।

चाटतस्कर दुर्वृत्तमहासाहसिकादिभिः।
पीड्यमाना प्रजा रक्षेत्कायस्थैश्च विशेषतः।।[14]

ऋषि के अनुसार राजा प्रजा की रक्षा करता था और इस रक्षण कार्य के बदले में प्रजा उसे कर प्रदान करती थी। कर प्राप्त कर लेने के पश्चात् यदि राज्य में कोई पाप कार्य होता था तो न केवल राजा उसके लिए उत्तरदायी था अपितु प्रजा द्वारा किए गए पापों का आधा पाप उसे वहन करना पड़ता था।[15]

पाराशर स्मृति में कहा कि जो भागती हुई सेना का संरक्षण करता है वह यज्ञ फल को प्राप्त करता है।

यस्तु भग्नेषु सैन्येषु बिद्रवस्तु समन्ततः।
परित्राता यदा यच्छेत् स च क्रतुफलं लभेत।।[16]

प्रजा पालन

प्रजा पालन के सन्दर्भ में याज्ञवल्क्य ने कहा है- यथा -

पुण्यात्षड्भागमादते न्यायेन परिपालनम्।।
सर्वदानाधिकं यस्मात्प्रजानां परिपालनम्।।[17]

अर्थात् न्यायपूर्वक प्रजा का पालन करने पर राजा प्रजाओं के पुण्य का छठवां भाग प्राप्त करता है। अत एव भूमि आदि सब प्रकार के दान से उत्पन्न पुण्यफल से प्रजापालन का फल अधिक होता है।

दण्ड व्यवस्था

मनु ने कहा कि राजा के हित के लिए ईश्वर ने पहले से ही प्राणियों का रक्षक, धर्मरूप और ब्रह्मतेज रूप अपने पुत्र दण्ड को उत्पन्न किया है।[18]

याज्ञवल्क्य ने भी दण्ड व्यवस्था के सन्दर्भ में कहा है यथा -

धर्मो हि दण्डरूपेण ब्रह्मणा निर्मितः पुरा।।[19]

अर्थात् आदिकाल में ब्रह्मा ने दण्ड के रूप में धर्म की ही सृष्टि की है।

राज्य की सीमा का विस्तार

स्मृति ग्रन्थ इस बात को पूर्णतः स्वीकार करती है तथा सहमत भी है कि राजा अपने साम्राज्य की वृद्धि के लिए दूसरे राजाओं से युद्ध करते हुए सीमा का विस्तार करें। याज्ञवल्क्य व मनु ने कहा कि पराजित राजा के वंश के एक व्यक्ति को राज्याभिषिक्त करें तथा राज्य (देश) की परमपराओं और मान्यताओं को सम्मान दे।

Scanned with CamScanner

न्याय प्रदान करना

पीड़ित प्रजा को न्याय प्रदान करना वैदिककाल से ही राजा का सर्वोत्तम कर्त्तव्य माना गया है। प्राचीन काल में राजा तथा न्यायाधिकारियों की अदालतों में विभिन्न मुकदमों का निपटारा होता था। याज्ञवल्क्य स्मृति में उल्लेख मिलता है कि राजा क्रोधी होने पर न्याय न करे। क्रोध तथा लोभ का परित्याग करके योग्य विद्वानों से परामर्श करते हुए धर्मशास्त्र के अनुसार व्यवहारों (मुकदमों, वादों) पर विचार करना चाहिए। राजा व्यक्ति के अपराध के अनुसार ही दण्ड प्रदान करता था।

मन्त्री (अमात्य) की योग्यता

याज्ञवल्क्य स्मृति में कहा गया है कि मन्त्री ज्ञानी (विवेकशील) वंश परम्परा से चले आने वाले, धैर्यवान एवं पवित्र पुरुष को ही मन्त्री बनाना चाहिए।

मन्त्री के विषय

पर राष्ट्रनीति (साड्गुण्य) सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और संश्रय इत्यादि विषयों पर अपने मन्त्रियों से परामर्श करें।

गोपनीयता

मन्त्रिपरिषद् में लिए गए निर्णय गोपनीय ही बने रहने चाहिए। समय से पूर्व उनका किसी को पता चल जाना या प्रकाशित हो जाना राष्ट्रहित में नहीं होता। याज्ञवल्क्य कहते हैं कि राजकार्य का मुख्य आधार मन्त्र (मन्त्रणा, गुप्त परामर्श) है। इसलिए मन्त्र को इस प्रकार गुप्त रखा जाना चाहिए कि राजा के कर्मों (सन्धि विग्रह आदि) के फलीभूत होने के पूर्व उसकी जानकारी किसी को न हो सके। यथा–

मन्त्रमूलंयतो राज्यं तस्मान्मन्त्रं सुरक्षितम्।
कुर्याद्यथाऽस्य न विदुः कर्मणामा फलोदयात्।।[20]

मन्त्रणा समय

याज्ञवल्क्य ने परामर्श देते हुए कहा कि अपराह्न में राजा को अपने मन्त्रियों के साथ बैठकर गुप्त विचार–विमर्श करना चाहिए। पुर (दुर्ग, किला अथवा राजधानी)–

याज्ञवल्क्य ने पुर अथवा दुर्ग को राज्य के सात अंगों में महत्वपूर्ण स्थान दिया है।

राजा के निवास के सन्दर्भ में कहा है कि

रम्यं रमणीयं अशोक चम्पकादिभिः। पशव्यं पशुभ्योहितंपशुवृद्धिकरम। आजीव्यमुपजीव्यं कन्दमूल–पुष्प–फलादिभिः। जांगलं यद्यप्यल्पोदकतरूपर्वतो देशो जांगस्थताप्यत्र सजलतरूपर्वतो देशो 'जांगल' शब्देनाभिधीयते। तं देशमावसेद–धिवसेत्। विज्ञानेश्वर की मिताक्षरा[21]

अर्थात् याज्ञवल्क्य स्मृति की मिताक्षरा में विज्ञानेश्वर ने कहा है कि राजा को ऐसे जांगल प्रदेश में वास करना चाहिए जो अशोक और चम्पक आदि पुष्पों के द्वारा अत्यन्त रमणीय हो जो पशुओं के लिए हितकर और पशुओं की वृद्धि करने वाला हो। कन्दमूल आदि फलों के द्वारा जहाँ जीवन निर्वाह हितकर हो और जहां जल जमा न रहता हो वहां निवास करना चाहिए।

देश (राष्ट्र जनपद)

स्मृतियों में जनपद के लिए प्रायः देश शब्द का प्रयोग किया है। स्मृतिकारों ने देश, राष्ट्र अथवा जनपद को अनेक छोटी–छोटी प्रशासनिक इकाइयों में विभक्त किया है। जिससे राष्ट्र का संचालन ठीक तरह से हो सके। इसी सन्दर्भ में याज्ञवल्क्य ने कहा

धातितेऽपह्नते दोषो ग्राम भर्तुरनिर्गते।
विवीत भर्तुस्तु पथि चौरोद्धर्तुरवीत के।।
स्वसीम्नि दद्यात् ग्रामस्तु पदं वा यत्र गच्छति।
पंचग्रामी बहिः क्रोशाद्दशग्राम्यथव पुनः।।[22]

अर्थात् छोटी इकाई के सन्दर्भ में कहा कि यदि गांव में किसी की हत्या हो जाए या किसी के यहां चोरी हो जाए और हत्यारे या चोर के पांवों के निशान यदि ग्राम के बाहर जाते नहीं दिखाई दें तो इसका दोष 'ग्रामपाल' पर होगा। इसके अतिरिक्त गांव की सीमा के भीतर हुई चोरी का दण्ड चोरी हुए सामान की कीमत की भरपाई ग्रामवासियों को करनी पड़ती थी। कई गांवों के बीच एक कोस (क्रोश) की दूरी पर चोरी आदि की घटना होने पर पांच या इस गांव मिलकर चोरी के सामान के मूल्य की क्षतिपूर्ति करते थे। चोरों को पकड़ने वाले अधिकारी को चौरद्धर्ता कहा जाता था।

कोष / खजाना

राज्य के सात अंगों में कोष का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण माना गया है। कोष के विषय मे कहा गया है कि इसके बिना न तो राज्य की रक्षा हो सकती और न ही शत्रु से युद्ध करने के लिए अच्छे सैनिक प्राप्त किया जा सकते।

कर लगाने का उद्देश्य

प्रजा की रक्षा करना राजा का प्रमुख कर्त्तव्य था। इसी के सन्दर्भ में कहा कि–

अरक्ष्यमाणाः कुर्वन्ति यत्किंचित्किल्विष प्रजाः।
तस्मातु नृपरेरर्द्ध यस्माद् ग्रहणात्यसौ करान्।।[23]

अर्थात् राजा रक्षा करने के लिए ही प्रजाओं से कर लेता है। कर देने के बाद भी प्रजा यदि असुरिक्षत होकर चौर्य आदि कर्म करती है तो उसका आधा पाप राजा को लगता है।

ISSN 2277-5587

Scanned with CamScanner

क्रयविक्रयमध्वानं भक्तं च सपरिव्ययम्।
योगक्षेमं च संप्रेक्ष्य वणिजो दापयेत्कान।।[24]

अर्थात् राजा को व्यापारियों पर कर लगाते समय यह अवश्य देख लेना चाहिए कि उन्होंने कितने मूल्य में वस्तुऐं खरीदी, मार्ग में भोजन आदि पर कितना व्यय हुआ, व्यापारिक सामग्री को एक स्थान से दूसरे स्थान पर लाते व ले जाते समय उसकी रक्षा पर कितना व्यय हुआ और जो सामान वह बेचेगा उस पर कितना धन (लाभ) प्राप्त होग। इस प्रकार राजा को कर लगाते समय जोंक, बछड़े, भंवरे और मालाकार को ध्यान में रखते हुए ही कर लगाना चाहिए। अपिच –

शरीरकर्षणात्प्राणाः क्षीयन्ते प्रणिनां यथा।
तथा राज्ञामपि प्राणाः क्षीयन्ते राष्ट्रकर्षणात्।।[25]

अर्थात् राजा को चाहिए कि वह प्रजा पर अन्यायपूर्ण कर न लगाए- क्योंकि प्रजा ही राजा का प्राण होती है। प्रजा नहीं होगी तो राजा राज किस पर करेगा? जिस प्रकार शरीर क्षीण होने से प्राणों का नाश हो जाता है उसी प्रकार यदि राजा अपनी प्रजा पर अत्यधिक करो का बोझ लादने का प्रयास करेगा तो वह अपने राज्य सहित स्वयं ही नष्ट हो जाएगा।

बल सेना

राजा अपने राष्ट्र की रक्षा तभी कर सकता है जब उसके पास पर्याप्त मात्रा में सेना हो। तत्कालीन भारतीय राजतन्त्रीय शासन के अन्तर्गत राजा ही सेना का प्रधान अधिकारी हुआ करता था। याज्ञवल्क्य ने इस सन्दर्भ में कहा –

बलानां दर्शनं कृत्वा सेनान्या सह चिन्तयेत्।[26]

अर्थात् राजा को प्रतिदिन अपनी सेना का निरीक्षण करते हुए सेनापतियों के साथ (समय-समय पर) विचार-विमर्श करते रहना चाहिए।

शत्रु आक्रमण का समय –याज्ञवल्क्य ऋषि कहते हैं कि-

यदा सस्यगुणोपेतं पर राष्ट्रं तदा व्रजेत्।
परश्च हीन आत्मा च ह्रष्टवाहन पुरुषः।।[27]

अर्थात् जब शत्रु का राज्य अन्न आदि से भुरा पूरा न हो, शत्रु की सेना दुर्बल हो, अपनी सेना के अश्वादि वाहन एवं सैनिक प्रसन्न और उत्साहपूर्ण हो तब राजा को आक्रमण करना चाहिए।

युद्ध के नियम

युद्ध करते समय किन-किन नियमों का ध्यान (रखा जाय) अर्थात् किस पर आक्रमण करें व किस पर आक्रमण नहीं करें, इसके विषय में कहा यथा –

तवांहवादिनंक्लीबं निर्हेतिं परसंगतम्।
न हन्याद्विनिवृतं च युद्ध प्रेक्षणकारिकम्।।[28]

अर्थात् मैं तुम्हारा ही हूं, ऐसा कहने वाले, नपुंसक, शस्त्रहीन, दूसरे के साथ युद्ध में संलग्न, (युद्ध से) निवृत्त और युद्ध देखने के लिए आए हुए व्यक्ति को नहीं मारना चाहिए।

न पानीयं पिबन्तं न भुंजानं नौपानहौ मुंचन्तं
नावर्माणं सवर्मा न स्त्रियं न करेणु न वाजिनं न
सारथिन
न सुतं न दूतं न ब्राह्मणं न राजानमराजा
हन्यात्।[29]

अर्थात् पानी पीते हुए, भोजन करते हुए, जूते उतारते हुए, कवच रहित, हाथी, घोड़े, सारथी, स्त्रियों और पुत्र शोक में दुःखी दूत, ब्राह्मण और राजा को नहीं मारना चाहिए।

सुहृद् मित्र

स्मृतिकार मानते हैं कि प्राचीन भारत में छोटे-छोटे राज्य प्रायः आपस में लड़ते रहा करते थे। दूसरे राज्य की भूमि, सुवर्ण आदि प्राप्त करने की लालसा युद्ध के कारण बनते थे। इसको बहुत ही सरल शब्दों में कहते शत्रु को हराने के लिए मित्र का होना अतिआवश्यक हो जाता है। अर्थात् अपने से शक्तिशाली राजा से मैत्री सम्बन्ध स्थापित करना। इस हेतु मण्डल सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया, जिसके अन्तर्गत अपने राज्य के आसपास और दूरस्थ राज्यों से राजनीतिक सम्बन्धों को कायम करने की प्रेरणा मिली। इस प्रकार राजाओं के समुदाय को जो कि कमल के आकार वाला हो उसे राजमण्डल कहते हैं।

हिरण्यभूमिलाभेभ्यो मित्रलब्धिर्वरा यतः।
अतो यतेत तत्प्राप्त्ये रक्षेत्सत्यं समहितः।[30]

अर्थात् भूमि, सुवर्ण के लाभ से मित्र की प्राप्ति उत्कृष्ट है। अत एव मित्र की प्राप्ति के लिए यत्न करना चाहिए।

निष्कर्ष

स्मृतिग्रन्थों में राजधर्म के प्रसंग बहुत है इस पत्र में राजा के गुण, दुर्गुण, दिनचर्या, शत्रुओं से युद्ध करना, प्रजा रक्षण, प्रजापालन, दण्ड व्यवस्था, राज्य सीमा विस्तार, न्याय, मन्त्री, मन्त्रणा, देश, सेना इत्यादि बिन्दुओं के विषय में लिखा गया है। एक पत्र की कसोटी पर यह पूरा उतरेगा ऐसी आशा है। मैने स्थान व समय की मर्यादा को ध्यान में रखते हुए बहुत ही संक्षिप्त में राजधर्म का उल्लेख किया है।

Scanned with CamScanner

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. मनुस्मृति 2/10
2. उ. प्र. हिन्दी संस्थान - 1992
3. याज्ञवल्क्य स्मृति 1/13/35 चौ. सं. सं. वाराणसी
4. ऋग्वेद 1.174.1
5. याज्ञवल्क्य स्मृति - 1/13/309-311
6. मुन - 7/30-33
7. याज्ञवल्क्य 1/13/340-341
8. याज्ञवल्क्य 1-13/309-311
9. याज्ञवल्क्य 1/1/327
10. याज्ञवल्क्य स्मृति 1/13/328
11. दक्ष स्मृति 7/18 (20 स्मृतियों, खण्ड द्वितीय, सम्पादन पं. श्री राम शर्मा आचार्य संस्कृति संस्थान, बरेली)
12. याज्ञवल्क्य स्मृति 1/13/325
13. याज्ञवल्क्य स्मृति 1/13/324
14. याज्ञवल्क्य स्मृति 1/13/336
15. याज्ञवल्क्य 1/13/337
16. पाराशर स्मृति 3/35
17. याज्ञवल्क्य स्मृति 1/13/335
18. मनुस्मृति 7/14
19. याज्ञवल्क्य स्मृति 1/13/354
20. याज्ञवल्क्य 1/13/344
21. याज्ञवल्क्य 1/13/321
22. याज्ञवल्क्य स्मृति स्तेम प्रकरण 2/23/271-272
23. याज्ञवल्क्य स्मृति 1/13/337
24. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/20/253
25. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/20/253
26. याज्ञवल्क्य स्मृति 1/13/329
27. याज्ञवल्क्य स्मृति 1/13/348
28. याज्ञवल्क्य स्मृति 1/13/326
29. विज्ञानेश्वर की याज्ञवल्क्य स्मृति 1/13/326 पर मिताक्षरा।
30. याज्ञवल्क्य 1/13/352

Scanned with CamScanner